प्रथम अध्याय

'चंद्रगुप्त विद्यालंकार : जीवन तथा साहित्य'

प्रथम अध्याय

चंद्रगुप्त विद्यालंकार : जीवन तथा साहित्य

किसी भी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करने से पहले उसके व्यक्तिगत जीवन तथा उसके जीवन से जुड़ी अनेक घटना–विशेषताओं का अध्ययन करना अत्यंत जरूरी है । क्योंकि साहित्य में उसी का चित्रण होता है जिसकी अनुभूति लेखक या साहित्यकार को होती है तात्पर्य यह कि साहित्यकार अपने जीवन की अनुभूत सच्चाईयों को किसी विशेष रचनात्मक उद्देश्य के साथ तथा वस्तुगत तठस्थता के साथ साहित्य में प्रकट करने की कोशिश करता है । अतः यह अध्ययन जरूरी है कि उसका व्यक्तिगत जीवन कैसे बीत गया है तथा उसके साहित्य के पीछे उसकी कौनसी संवेदना छिपी हुई है जिसे वह अपने साहित्य के माध्यम से प्रकट करना चाहता है ?

विद्यालंकार जी के साहित्य में भी उनके अपने व्यक्तिगत जीवन की संवेदना प्रकट हुई है । उनके सम्पूर्ण साहित्य पर अपने व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव विद्यमान है । इस संदर्भ में समीक्षक डॉ. महावीरसिंह चौहान जी का कथन संयुक्तिक लगता है कि –" लेखक के पास अपने निजी अनुभवों का एक भरा पूरा संसार है, इस अनुभव को कलात्मक आकार प्रदान करने की उसमें पर्याप्त क्षमता है, लेकिन सबसे बड़ी बात है अपने अनुभवों में निहित मानवीय अर्थवत्ता की पहचान और उसका उद्घाटन कहना न होगा कि किसी घटना या चरित्र को अपेक्षित तठस्थता और उचित परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की सामर्थ्य से ही उसमें निहित मानवीय संगति और संभावना को पहचाना जा सकता है ।"[1] स्पष्ट है कि साहित्यकार के जीवन–परिचय तथा व्यक्तित्व की जानकारी लिए बगैर हम उनके साहित्य को पूरी तरह कदापि समझ नहीं सकेंगे । इसलिए यहां हम चंद्रगुप्त जी के जीवन तथा व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देना आवश्यक समझते हैं ।

---

1 "प्रकर " पत्रिका, पृष्ठ –16, डॉ. महावीरसिंह चौहान के लेख " छोटे बड़े दायरे की समीक्षा " से उद्धृत, सितम्बर , 1985 ।

सामान्यतः व्यक्ति का समग्र परिचय प्राप्त करने के लिए अध्ययन की सुविधा के अनुसार उपलब्ध सामग्री को तीन भागों में विभाजित करना समीचीन है --

1. व्यक्ति परिचय ।
2. व्यक्तित्व ।
3. कृतित्व ।

उपर्युक्त ब्यौरों को आधार बनाकर नाटककार चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी का परिचय देखना हम उचित मानते हैं --

1.1 व्यक्ति परिचय --

इसके अंतर्गत लेखक का जन्म, माता-पिता , परिवार , बचपन, शिक्षा, विवाह, वैवाहिक जीवन, संतान, मित्र-परिवार , नौकरी और देहावसान आदि पर विचार किया जा रहा है --

1.1.1 जन्म --

महान साहित्य साधक चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी का जन्म पश्चिम पंजाब के मुजफ्फरगढ़ जिले में (अब पाकिस्तान में) सिन्ध नदी के किनारे स्थित कोट अद्दू नामक कस्बे में 4 दिसम्बर, 1906 को एक आर्य समाजी परिवार में हुआ । यह एक जमींदार परिवार था । ये अपने घर में सभी से बड़े बेटे थे । इसी कारण उनके उदार हृदय पिताजी की उन पर विशेष स्नेह दृष्टि थी । उनके पिताजी अच्छे विचारवंत थे । कहना न होगा कि उनका जन्म एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था ।

1.1.2 माता-पिता एवं परिवार --

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के पूज्य पिता लाला श्री. टेकचंदजी एक प्रसिद्ध जमींदार थे । उनके चरित्र के निर्माण का श्रेय उनके पिताजी के आदर्श व्यक्तित्व को है । पिताजी ने बालक चंद्रगुप्त को

छः साल की उम्र में ही परिवार से विनुक्त कर शहर के प्रलोभनों से दूर गुरूकुल कांगड़ी में पढ़ने के लिए भेज दिया था । पिताजी की उन पर अपार स्नेह दृष्टि थी । वे उन्हें बहुत प्यार करते थे मगर गुस्सैल भी थे, बिगड़ जाते तो बहुत बिगड़ जाते थे । चंद्रगुप्त जी का स्वभाव भी गुस्सैल ही था यह स्वभाव उन्हें अपनी वंश परम्परा से मिला हुआ था ।

11 साल की छोटी उम्र में ही चंद्रगुप्त जी अपनी पूजनीय माँ की स्नेहछाया से वंचित हो गए। दो महीने के उपरान्त उन्हें अपनी स्नेहमयो जननी की स्वर्ग विधारने की दुखद सूचना मिली तब उनके किशोर मन पर बहुत बड़ा आघात पहुँचा । पिताजी खेतीबारी संभालते थे । उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी थी । वे अपने परिवार के प्रति हमेशा सजगता से व्यवहार करते थे । वे एक अच्छे विचारवंत और आदर्श व्यक्तित्व के धनि थे । चंद्रगुप्त जी का एक छोटा भाई था जिनका नाम विष्णुदत्त था और दो बहने थी जिनमें बड़ी का नाम विद्यावती था ।

1.1.3 बचपन और शिक्षा --

चंद्रगुप्त जी को छः साल की छोटी-सी उम्र में ही गुरूकुल कांगड़ी गंगा के पास हरिद्वार में शिक्षा के लिए भेजा गया था । अतः उनका पूरा बचपन गुरूकुल के अनुशासनपूर्ण वातावरण में बीत गया था । गुरूकुल कांगड़ी से घर जाने के लिए मना था इसी कारण माता-पिता के प्यार से वे वंचित हो गये थे । माता तो ग्यारह वर्ष की छोटी उम्र में ही गुजर गयी थी इसी कारण माता का प्यार तो पहले से ही खो चुका था । माता के स्वर्ग विधारने की खबर भी उन्हें दो महीने के उपरान्त मिली तब वे गुरूकुल में ही थे । इस दुखप्रद घटना से उनके हृदय को कितना गहरा आघात लगा होगा अनुभव की वस्तु है – उनका वर्णन असंभव है ।

उस समय गुरूकुल कांगड़ी की बस्ती शहरी वातावरण से दूर प्राकृतिक स्थल पर बसी हुई थी यहाँ के बीहड़ जंगल में रहना साहस का काम था । परिवार से दूर अकेले रहने के कारण उनका कोमल ह्दय दुख में निमग्न रहता था । उस निर्मम एकान्त को सहन कर समर्थ होकर उनको स्वयं अपना निर्माण करने, अपने जीवन को फलप्रद बनाने की प्रेरणा मिली । स्वयं अपने जीवन की रूपरेखा का निर्धारण करने में उन्हें पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । पर उन्होंने अपने को विचलित न होने दिया ।

चंद्रगुप्त जी के गुरू स्वामी श्रद्धानंद जी थे । वे उन्हें अनुशासन में रखते थे । चंद्रगुप्त जी ने गुरूकुल कांगड़ी के शान्त वातावरण में लगातार 16 वर्षों तक अध्ययन किया । उनके निर्धारित पाठ्य-विषय थे संस्कृत, अंग्रेजी, व्याकरण, इतिहास ,भूगोल, भौतिक और रसायनशास्त्र । सामान्यतः एक उच्च विद्यालय में जितनी पाठ्य-पुस्तकों के पठन-मनन करने का नियम है, गुरूकुल में उन से दुगुनी पाठ्य-सामग्री का अध्ययन करना अनिवार्य था । गुरूकुल ने उन्हें शिक्षा के उपरान्त विद्यालंकार से विभूषित किया था ।

किशोर जीवन में ही विशेष रूप से उनमें लिखने की अभिरूचि पुष्पित-पल्लवित हो चुकी थी। उन्होंने 12 साल की छोटी-सी अविकसित उम्र में ही एक निबन्ध लिख डाला था । चंद्रगुप्त जी के व्यक्तित्व के संबंध में डॉ. मंजुला दास अपनी रचना " प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना " में लिखती है -- " गुरूकुल में शिक्षा प्राप्त करने के कारण एक ओर उनके जीवन में संयमशीलता रही तो दूसरी ओर पंजाब प्रदेश की अल्हड़ता का मिश्रित प्रभाव भी उनके नाटकों पर लक्षित होता है।"[1] बचपन में वे हठीले थे । अपने मन के अनुसार जीवन जिना उनकी आदत थी । गुरूकुल में सुबह जल्दी उटने का नियम था, मगर चंद्रगुप्त जी देर रात तक अध्ययन एवं चिंतन करते रहते थे इसीकारण सुबह उठ नहीं पाते थे परिणामस्वरूप गुरूजनों से पीटे जाते थे अतः वे दुखी हो जाते ।

1.1.4 **विवाह --**

चंद्रगुप्त जी का विवाह लुधियाना (पंजाब) के जाने-माने सुप्रसिद्ध वकील धनिराम थापर की सबसे छोटी बेटी स्वर्णलता के साथ 22 जून ,1936 में आर्य समाज पद्धति के अनुसार हुआ था । धनिराम थापर जी के बड़े बेटे तथा स्वर्णलताजी के बड़े भाई अमरनाथ और चंद्रगुप्त जी गुरूकुल में साथ-साथ पढ़ते थे । वे दोनों एक-दूसरे के हमदम साथी तथा अच्छे दोस्त थे । यही एक घटना थी जिसके संयोग से चंद्रगुप्त जी और स्वर्णलताजी का विवाह संपन्न हुआ ।

स्वर्णलता बहुत ही सुंदर ,सुशील एवं बुद्धिमान थी । उसने बनारस हिन्दू युनेव्हर्सिटी से

---

1 डॉ. मंजुला दास - प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ- 143 ।

इंटरमिडिएट की परीक्षा दे दी थी उसी समय उनका विवाह हो गया । उन दोनों पति–पत्नि की उम्र में 13 साल का अंतर था । जब उनकी शादी हुई तब विद्यालंकारजी 30 साल के थे और स्वर्णलताजी की उम्र 17 साल के आसपास थी ।

1.1.5 वैवाहिक जीवन–

चंद्रगुप्त जी का वैवाहिक जीवन बहुत अच्छी तरह व्यतीत हुआ । वे सुंदर, सुशील और सुशिक्षित तथा सभ्य पत्नी को पाकर बहुत खुश थे । वे अपनी पत्नी से बहुत प्यार किया करते थे । चंद्रगुप्त जी नरमदिल के और आजाद व्यक्तित्त्व के खयालात के होने के कारण वैवाहिक जीवन में किसी भी प्रकार का व्यवधान या संकट नहीं पड़ा । उनकी पत्नी स्वर्णलताजी के शब्दों में ––" हमारा वैवाहिक जीवन अच्छी तरह बीता । छोटे–मोटे झगड़े जरूर हुआ करते थे मगर हमारा पारिवारिक जीवन बहुत अच्छी तरह बीता । चंद्रगुप्त जी ब्रॉड माइंडेड के थे । आर्ट के प्रेमी थे । मैं जब ड्रामा में हिस्सा लेती थो तो उन्हें कोई एतराज नहीं था बल्कि मुझे प्रेरित करके उत्साहित बनाते थे । उन्होंने मुझे दिल्ली के सुप्रसिद्‌ध डांसर उदयशंकर जी की क्लास में डांस सिखने के लिए भेजा था । वे कला के प्रेमी थे । उन्हें फोटोग्राफी का भी शौक था । वे बिल्कुल आजादी व्यक्तित्व के विचारक थे । इसीकारण कभी भी किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाते थे । " हर एक को अपनी–अपनी चॉइस के अनुसार जिंदगी व्यतीत करनी चाहिए " के विचारवाले थे । बिल्कुल आजाद खयालात के आदमी थे । बच्चों के प्रति उन्हें बहुत प्यार था । इसी कारण पारिवारिक जीवन बहुत अच्छी तरह से व्यतीत हुआ।"[1] चंद्रगुप्त जी का पारिवारिक जीवन उनके आदर्श विचार तथा आदर्श व्यक्तित्व के कारण सफल हुआ था।

1.1.6 संतान

चंद्रगुप्त जी के दो बेटियाँ ही हैं । उनके बेटा नहीं था । उनकी बड़ी बेटी रेवा का विवाह हो चुका है । वह आजकल ठाना (मुंबई) में वसन्त विहार, 13, कुसुम्बा स्थित फ्लॅट में अपने पति मेजर के.के. महता के साथ रहती है । मेजर मेहता आर्मी से निवृत्त हुए हैं और रेवा सेवानिवृत्त अध्यापिका है ।

---

1 श्रीमती स्वर्णलता जी के साक्षात्कार से उद्‌धृत, परिशिष्ट – क्र.1 ।

छोटी बेटी का नाम रानी है । उसका प्रेमविवाह हुआ है । वह आज कल अपने साइंटिस्ट पति के साथ अनरिका में रहती है ।

चंद्रगुप्त जी स्त्री–पुरूष, बेटा–बेटी या लड़का–लड़की जैसा लिंग भेद नहीं मानते थे । वे अपने बच्चों के प्रति बहुत प्यार किया करते थे । जिनके प्रति उन्हें प्यार था उनकी निंदा वे कभी–भी सहन नहीं करते थे । वे व्यक्ति स्वातंत्र्य के हिमायती थे । उन्होंने अपनी छोटी बेटी रानी के प्रेम विवाह के लिए कोई आनाकानी नहीं की । झट से शादी के लिए अनुमति दे दी । वे संकुचित मनोवृत्ति के नहीं थे । उनके बच्चे भी उन्हें बहुत मानते थे । उन पर जी-जान से प्रेम करते थे ।

1.1.7 **मित्र–परिवार––**

चंद्रगुप्त जी को मित्रता बढ़ाने का भारी शौक था । इसी कारण वे दूसरों के जल्दी मित्र बनते थे । काफी लोगों के यहाँ उनका आना–जाना रहता था । बड़े–बड़े साहित्यिकों के साथ उनकी गहरी दोस्ती थी । बड़े–बड़े साहित्यिकों के साथ उनके घरेलू संबंध थे । उनके यहाँ उनका आना–जाना, उठना–बैठना रहता था । उनके प्यारे स्वाभाव के कारण तथा खुशदिल और दिलदार स्वभाव के कारण उन्हें काफी मित्र मिलें । वे हमेशा अच्छे मित्र, अच्छे व्यक्तियों के सहवास में रहें । बेकार और फालतू लोगों के साथ वक्त निकालना उन्हें अच्छा नहीं लगता था । वे समय को सार्थक लगाने के पक्ष में थे । उनके नजदीक के मित्रों में से सत्यकेतु विद्यालंकार , अमरनाथ विद्यालंकार, सत्यकाम विद्यालंकार, सत्यव्रत वेदालंकार आदि प्रमुख हैं । सत्यवती मलिक और दिना पाठक उनकी अच्छी गर्ल फ्रेन्ड थी । उनके साहित्यिक मित्रों में हरिवंशराय बच्चन जी से उनका घरेलू रिश्ता था । इसके साथ ही अज्ञेय, बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बलराज साहनी, भीष्म साहनी, मन्मथनाथ गुप्त आदि के साथ भी उनका अच्छा मित्रतापूर्ण व्यवहार था । यशपाल , सुमित्रानंदन पंत , प्रेमचंद , जयशंकर प्रसाद, पराड़कर तथा निराला के साथ भी उनकी अच्छी जान–पहचान थी ।

1.1.8 **नौकरी ––**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने सरकारी नौकरी सर्वप्रथम सन 1948 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित " विश्व–दर्शन " के संपादक के रूप में शुरू की थी । किन्तु इससे भी पहले उन्होंने

आजीविका के लिए पत्रकारिता को चुना था । डॉ. मंजुला दास अपनी रचना " प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना " में विद्यालंकार जी के संबंध में लेखती है ," आजीविका के लिए उन्होंने पत्रकार का जीवन अपनाया तथा क्रमशः "आजकल" और " सरिका " जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन किया ।"[1] चंद्रगुप्त जी ने देहरादून और लाहौर से प्रकाशित "ज्योति " और दैनिक "जन्मभूमि " का दक्षता के साथ संपादन किया ।

गुरूकुल कांगड़ी ,विश्वविद्यालय से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका " राजहंस " के संपादन में भी उन्होंने अपनी साधना और प्रतिभा का परिचय दिया । सन 1932 से सन 1947 तक उन्होंने लाहौर से " विश्व साहित्य ग्रंथ माला " के अंतर्गत एक सौ ग्रंथों का संपादन किया । सन 1945 में महात्मा गांधी ने उन्हें भारतीय साहित्य परिषद की कार्य-समिति में एक सदस्य के रूप में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया । सन 1945 से सन 1947 तक " किसी भी भारतीय भाषा में लिखी हुई किसी एक कृति का रूपान्तर सभी भाषाओं में हो जाय " इस भारतीय साहित्य परिषद के मूलभूत उद्देश्य विशेष के महत्त्व को ध्यान में रखकर चंद्रगुप्त जी ने अपने दायित्व की गरिमा का पालन किया ।

सन 1948 से सन 1954 तक वे भारत सरकार द्वारा प्रकाशित "विश्व-दर्शन " के संपादक रहें । सन 1955 से 1963 तक उन्होंने पब्लिकेशन्स डिवीजन ,ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली से प्रकाशित हिन्दी मासिक पत्रिका "आज कल " का सफलतापूर्वक संपादन किया । सन 1964 में हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका " सारिका " मुम्बई ने उनको संपादक के रूप में आमंत्रित किया । उन्होंने सन 1964 से लेकर सन 1967 तक " सारिका " पत्रिका का सफलतापूर्वक संपादन का काम किया ।

1.1.9 **मृत्यु --**

महान साहित्य साधक पंडित श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी की मृत्यु हृदय गति बंद हो जाने के कारण 14 फरवरी ,1985 को सुबह पाँच बजे ठाना (मुम्बई) में स्थित श्रीरंग सोसाईटी में अपनी बड़ी बेटी रेवा के घर में हुई । मृत्यु समय उनकी उम्र 79 वर्ष की थी । मृत्यु समय उनके पास

---

1 डॉ. मंजुला दास – प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ – 143 ।

उनकी धर्मपत्नी स्वर्णलता, बड़ी बेटी रेवा और जमाई मेजर के.के. मेहता थे । मृत्यु से पूर्व उन्हें कोई बीमारी नहीं थी । वे पहले से ही बिल्कुल तंदुरूस्त थे उन्हें कोई व्यसन नहीं था अतः तन और मन से वे अंत तक तंदुरूस्त रहें ।

उनकी मृत्यु के संदर्भ में उनकी पत्नी स्वर्णलताजी कहती हैं -- " उनकी मृत्यु हँसते बोलते ,खाते-पिते हुई । उन्हें ना कोई बीमारी थी ना वे बिस्तर पर पड़े उस दिन सुबह 4.50 बजे उन्होंने छाती में दर्द महसूस किया और साँस लेने में कठिनाई हो रही है की शिकायत की तो तुरंत डाक्टर को बुलाया । उन्होंने ही डाक्टर से कहा कि आप बचा सकते है तो बचा लीजिए । डाक्टर ने काफी कोशिश की मगर कोई फायदा नहीं हुआ । उनकी हृदय गति बंद हो गयी और मृत्यु हो गयी।"[1] चंद्रगुप्त जी की मृत्यु हृदय गति रूक जाने के कारण हुई । वे अंत तक बिल्कुल तंदुरूस्त थे उन्हें जीने की अदम्य लालसा थी । वे अंतिम समय तक स्वावलंबी और फूर्तिले थे । इतने कि मृत्यु से पहलेवाले दिन उन्होंने अपने कपड़े स्वयं धो डाले थे । उनकी मृत्यु के कारण हिन्दी साहित्य की विशेषता कहानी क्षेत्र की भारी क्षति हुई । हिन्दी साहित्य संसार एक महान प्रतिभाशाली साहित्यिक से वंचित हो गया ।

1.2 व्यक्तित्व --

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व निराला होता है । व्यक्तित्व वह चीज है जिससे व्यक्ति के गुण विशेष तथा असमान्य विशेषताओं का पता चलता है । तात्पर्य यह कि व्यक्तित्व के जरिए व्यक्ति या साहित्यकार में होनेवाली असामान्य अथवा असाधरण विशेषताओं का उद्घाटन होता है । व्यक्तित्व एक ऐसा वैशिष्टयपूर्ण ढाँचा है जिससे व्यक्ति के विभिन्न चारित्रिक पहलुओं का दर्शन होता है । इसके साथ ही व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक चित्तवृत्तियों का दर्शन भी उसमें निहित है । व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर अवश्य पड़ता है । व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण उसके आसपास के माहौल पर भी निर्भर है जिससे व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग व्यक्तित्व का निर्माण होता है । यहाँ हम विद्यालंकार जी के व्यक्तित्व का विवेचन करते हैं ।

---

1 श्रीमती स्वर्णलता जी के साक्षात्कार से उद्धृत , परिशिष्ट क्र.1 ।

1.2.1 **बहिरंग व्यक्तित्व--**

श्री. चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के बाह्य व्यक्तित्व में आकर्षक था उनका चेहरा । उनके चेहरे पर एक विशेष प्रकार का तेज था जो उनके पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देत था । उनका शरीर मजबूत और पुष्ट था । शरीर के अनुकूल मध्यम ऊँचाई 5 फिट 6 इंच उनके बाह्य व्यक्तित्व को शोभा देती थी । साँवला वर्ण और बुद्धिमानी जैसा कपोल उनके बाह्य व्यक्तित्व में विशेष बात थी । उनकी आँखें बड़ी और तरल थीं जो किसी चीज का शोध ले रही हो ऐसा लगता था । उन्होंने अपने शरीर को पुष्ट और सुगठित रखा था ।

1.2.2 **अंतरंग व्यक्तित्व --**

चंद्रगुप्त जी के बहिरंग व्यक्तित्व की अपेक्षा कई गुना अंतरंग व्यक्तित्व अच्छा था । हमेशा हँसमुख हँसोड़ व्यक्तित्व सरल और मृदु स्वाभाव, खुशदिल, तत्परता, स्नेहमयी और ममतापूर्ण व्यवहार, बातूनी स्वभाव आदि उनके अंतरंग व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ थीं । वे नरम और खुले दिल के शौकिन और बहुत ही संवेदनशील तथा गुस्सैल स्वभाव के थे । उनके व्यक्तित्व के बारे में उनके परमस्नेही और मित्र मन्मथनाथ गुप्त कहते हैं --" मैंने लगभग बारह साल उनके साथ पुराना सचिवालय में काम किया । जब भी कोई समस्या लेकर उनके पास गया उपकृत और चमत्कृत होकर लौट आया ।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि विद्यालंकार जी का व्यक्तित्व उदारहृदयी , उदात्तविचारवाला और ज्ञान संपन्न था । उनके संवेदनशील स्वभाव के बारे में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती स्वर्णलता जी कहती हैं --" वे बहुत ही संवेदशील स्वभाव के थे । सन 1984 में जब प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या हुई तब वे हमारी छोटी बेटी के पास अमरिका में थे । वहाँ हत्या का समाचार सुनकर बहुत डिस्टर्ब हुए । 'ऐसा क्यों हुआ ? नहीं होना चाहिए था " ऐसा कहकर बहुत चिंतित हो गए । वे बहुत ही भावुक थे । उस वक्त तुरंत ही भारत वापस आयें । यहाँ भी खूब चिंतित रहें । उन दिनों वे बहुत ही अस्वस्थ रहते थे ।"[2] चंद्रगुप्त जी के संवेदनशील व्यक्तित्व की अमिट छाप उनके साहित्य में

---

1 "सारिका " पत्रिका , पृष्ठ - 71 , श्री. मन्मथनाथ गुप्त के लेख"साहित्य साधक चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत, मार्च 1985 ।

2 श्रीमती स्वर्णलता जी के साक्षात्कार से उद्धृत, परिशिष्ट क्र. 1 ।

देखने को मिलती है । देश, व्यक्ति या समाज से संबंधित एक-एक घटना, हादसा उनके संवेदनशील मन पर आघात कर जाती थी, वह फिर चाहे विभाजन की त्रासदी या कोई अन्य घटना ।

राम इकबाल सिंह "राकेश " जो ने 18 फरवरी , 1963 में चंद्रगुप्त जी की उनके "आजकल" के कार्यालय में भेट ली थीं । उनके व्यक्तित्व के सबंध में वे कहते हैं --" अल्पकालीन भेंट में ही उनके सरल अकृत्रिम व्यक्तित्व ने मेरे मन पर गहरा असर डाला । उनका व्यवहार आधुनिक युग के दिखावटी शिष्टाचर से भिन्न था । उनके दाक्षिण्य ने मेरे हृदय में उनके प्रति आदर की भावना पैदा कर दी ।"[1] स्पष्ट है कि चंद्रगुप्त जी आड़म्बर और दिखावटीपन से बहुत दूर और संवेदनशील थे । उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था ।

अंतरंग व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू --

1.2.2.1 **विविध दर्शन शास्त्रियों से प्रभावित--**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी पढ़ने के काफी शौकीन होने के कारण तथा अच्छे अध्येता होने के कारण उन्होंने विभिन्न विचारकों के चरित्र का तथा उनके साहित्य का गहरा अध्ययन किया था । अतः किसी दर्शनशास्त्री अथवा विचारकों के व्यक्तित्व का उन पर प्रभाव या असर पड़ना स्वाभाविक ही है । उन्होंने कई साहित्यिकों का साहित्य पढ़ा मगर सभी के विचारों का प्रभाव अपने व्यक्तित्व पर नहीं होने दिया । कुछ ही विचारक और दर्शनशास्त्री के विचारोंका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और यही उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता कहनी पड़ेगी । इसीकारण उनका व्यक्तित्व बहुत ही प्राकृतिक और जिबंत लगता था । विद्यालंकार जी के बारे में राम इकबाल सिंह " राकेश" का कथन बहुत महत्त्वपूर्ण लगता है ।वे कहते हैं -" उन्होंने मार्टिन लूथर और लेनिन की विचारसरणियों का अध्ययन अवश्य किया, पर उनसे अपने को प्रभावित नहीं होने दिया । आत्मबलिदान के प्रतीक और ज्ञान के जागरूक जिज्ञासू सुकरात के दार्शनिक विचारों का उन पर सबसे प्रमुख और गहरा प्रभाव पड़ा ।"[2] स्पष्ट है कि विद्यालंकार जी का व्यक्तित्व सुकरात, प्लेटो जैसे महान् दार्शनिकों के विचारों से प्रभावित था । उन

---

1 "योगी ' पत्रिका , पृष्ठ - 7, श्री. राम इकबाल सिंह " के लेख "पंडित श्री. चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत, जून 1971 ।

2 वही, पृष्ठ - 7 ।

पर लेनिन के विचारों का कोई असर नहीं पड़ा मतलब वे समाजवादी–मार्क्सवादी विचार के पक्षपाति नहीं थे । अतः उनका व्यक्तित्व ज्ञानी, जागरूक एवं जिज्ञासू था । गौतम बुद्ध के "बहुजन हिताय" जैसे अर्थपूर्ण संदेश को उन्होंने अपने जीवन का एक अंग मान था । ऐतिहासिक म्हान् व्यक्तित्व सम्राट अशोक के आचारविषयक नियमों और सत्य–अहिंसा के प्रकाश स्तंभ महात्मा गांधी के अध्यात्मिकता से अनुप्राणित मंतव्यो ने उनके अंतर्मन का आन्दोलित किया था । फिर भी उन्होने युक्तिमूलकता को अनपेक्षित समझकर किसी सिद्ध पुरूष अथवा दार्शनिक के कटे–छटे मंतव्य को अंतिम प्रमाण के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया ।

1.2.2.2 **अध्ययन एवं चिंतनशीलता--**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी की संपूर्ण शिक्षा गुरूकुल जैसे अनुशासनमय वातावरण में हुई थी । इसीकारण उनका व्यक्तित्व संयमी, अध्ययनशील ,कठोर परिश्रमी एवं चिंतनशील बना । उन्होंने हिंदी के साथ–साथ संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का भी अध्ययन किया था । वे बचपन से ही प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के थे । बचपन से ही उनमें लिखने की अभिरूचि पुष्पित–पल्लवित हो चुकी थी । सृजनकर्म के प्रति उनके अभिजात्य और नैसर्गिक अनुराग का ही यह प्रमाण है कि उन्होंने अपनी बारह साल की छोटी–सी अविकसित अवस्था में ही एक निबंध लिख डाला था ।

चंद्रगुप्त जी की अध्ययन एवं चिंतनशील प्रवृत्तियों के संदर्भ में राम इकबाल सिंह " राकेश " कहते हैं -- " प्रायः रात्री में चुपचाप चिंतन करते हुए कभी एक ही बैठक में और कभी दो–तीन बैठकों नें भी वह अपनी एक कहानी पूरी कर लेते हैं । उन्होंने अपना " अशोक " नामक नाटक पाँच दिनों में लिख डला था ।"[1] उनका व्यक्तित्व आदर्शवादी था उनके मन में प्रच्छन्न रूप से जो भी प्रेरणाप्रद मूल विचार उत्पन्न होते थे या जो कुछ भी आइडिया आता उन्हें वे लाक्षणिक भाव शीर्षकों के रूप में अपनी डायरी में अंकित कर लेते थे लिखते सम्य वे किसी विषय के कलापूर्ण गठन को ध्यान में रखकर उस विषय के द्वारा अपने इसी अमूर्त केन्द्रीय विचारों का मूर्त रूपदेने का प्रयास करते थे । उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त कहते हैं --" विद्यालंकार जी किसी वाद

---

1 योगी " पत्रिका , पृष्ठ – 7, श्री.राम इकबाल सिंह "राकेश " के लेख ' पंडित श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत , जून ,1971 ।

विशेष के अनुयायी या पिछलग्गू नहीं, अतः सर्वत्र उनकी अपनी मान्यताएँ एवं उनका निजी चिन्तन मुखर है ।"[1] स्पष्ट है कि विद्यालंकार जी का व्यक्तित्व किसी कटघरे में अटका हुआ नहीं था । उनके व्यक्तित्व का दायरा बहुत विशाल था । अरूणोदय वेला में शय्या-त्यागकर उठने के साथ ही हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र पढ़ना और रात्री में पठन-पाठन, चिंतन एवं सृजन करना चंद्रगुप्त जी का दैनंदिन कार्यक्रम था । निष्कर्ष यह कि विद्यालंकार जी का व्यक्तित्व अध्ययन एवं चिंतनशील रहा है ।

1.2.2.3 **विभिन्न साहित्य एवं साहित्यकारों से प्रभावित--**

किसी भी लेखक या साहित्यकार का अपने जीवनकाल में विभिन्न लेखकों, कवियों आदि के संपर्क में आना स्वाभाविक है । इस संपर्क के कारण उनके आचार, विचार और व्यवहार का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ता है तथा उनसे साहित्य सृजन की प्रेरणा भी मिल जाती है । चंद्रगुप्त जी का स्वभाव बहुत ही मिलनसार, मित्र प्रेमी और बातूनी था इसी कारण उनके व्यक्तित्व का दायरा बहुत बड़ा था । उन्के संपर्क में हरिवंशराय बच्चन, रविंद्रनाथ टैगोर , प्रेमचंद तथा उनका साहित्य आ गया था जिससे उनके व्यक्तित्व को उभरने का मौका मिल गया । इसके साथ-साथ महात्मा गांधी के भी वे भक्त थे जिनके संपर्क ने उन पर काफी प्रभाव डाला । विद्यालंकार जी अपनी आस्था के प्रति बहुत ही सतर्क थे । वे अपनी आस्था पर न कभी चोट या प्रहार सह सकते थे और न उसकी निंदा सहन कर सकते थे । अगर कोई उनके प्रिय या आस्था के धनि व्यक्तित्व की निंदा करता तो वे बहुत तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त कर उन्हें चूप करा देते थे । महात्मा गांधी को वे आदर्श मानते थे । वे उनके परम भक्त थे और अनुयायी भी । वे गांधीजी को "दूसरा सूर्य " की संज्ञा देते । महात्मा गांधी के संबंध में उनके विचार द्रष्टव्य हैं --" विद्यालंकारजी का मानना है कि बापू पाकिस्तान जा सके होते तो शायद हिन्दुस्थान और पाकिस्तान का नक्शा बदल गया होता । क्योंकि तमाम दुनिया में एक ही शख्स था, जिसनें यह ताकत थी कि वह तवारीख को बदल दे यानी अभी तक जो कुछ हो गया है, उसे भी गांधी जी अपनी ताकत से बदल सकते थे ।"[2] विद्यालंकार जी विदेशी रूसी लेखक इवान तुर्गनेव, तालस्ताय, चेखव एवं मैक्झिम गोर्की के साहित्य से काफी प्रभावित हो चुके थे ।उन्होंने इनकी प्रसिद्ध रूसी कहानियों को हिंदी में अनुदित करके " मेरी प्रिय कहानियाँ " नामक शीर्षक संग्रह में संग्रहित

---

1 सं. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त -हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, पृष्ठ - 904 ।

2 "प्रकर" पत्रिका, पृष्ठ-16, डॉ. महावीर सिंह चौहान के लेख "छोटे बड़े दायरे की समीक्षा" से उद्धृत, सितम्बर, 1985 ।

किया । हरिवंशराय बच्चन जी से प्रभावित होकर विद्यालंकार जी ने उनकी संक्षिप्त जीवनी लिखी जो " आज के हिंदी कविमाला " में प्रकाशित हुई । इसके अलावा स्वामी दयानंद सरस्वती के क्रांतिकारी विचारों से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की । भवभूति के " उत्तररामचरित " नामक नाटक और महाकवि बाणभट्ट तथा भारवी की कृतियों के सौन्दर्यशिल्प ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया था ।

1.2.2.4 **घुमक्कड--**

चंद्रगुप्त विद्यालंकारजी का व्यक्तित्व भ्रमणशील एवं घुमक्कड था । वे टहलने , घूमने-फिरने, सैर करने के काफी शौकीन थे । उन्हें यह घूमने-फिरने की आदत बचपन से ही थी । गुरूकुल के वातावरण में भी वे सुबह-शाम घूमने निकल जाया करते थे और प्रकृति के मनोरम आँचल में आनन्द और खुशी से झूम उठते थे । राम इकबाल सिंह " राकेश " उनके इस भ्रमणशील वृत्ति का परिचय देते हुए लिखते हैं --" एक बात तो चंद्रगुप्त जी घूमते-फिरते शेर की खतरनाक माँद में जा पहुँचे थे। एक मानचित्र को आधार मानकर कांगड़ी के वन प्रान्त में नित्य भ्रमण करने का उनका नियम था ।"[1] उन्हें बचपन में सूर्यास्त देखने का शौक था सूर्यास्त का नयनरंजक दृश्य उन्हें आत्मविस्मृत कर देता था काफी देर तक सूर्यास्त का दृश्य देखते हुए अकेले ही किसी चट्टान पर बैठ जाते थे । वे हर रोज सूर्यास्त देखने के लिए मुक्त प्रकृति के प्रांगण में जाया करते थे । प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति उन्हें विलक्षण आकर्षण था । प्रकृति के साये में उन्हें ब्रह्मानंद मिलता था । वे अपने को मुक्त महसूस करते । वस्तुतः वे मुक्त और आजाद व्यक्तित्व के थे ही । वन,जंगल में घूमना वहाँ की प्रकृति को परखना,पशु-पंछियों में कुछ समय बिताना उन्हें अच्छा लगता था । यह उनकी बचपन की ही आदत थी ।

बड़े होकर भी उनकी यह आदत नहीं छुटी थी । वे मित्रों के साथ बातचीत तथा विचार विमर्श करने के लिए घूमने निकलते थे । वे टहल-टहलकर बातें करने के शौकीन थे । उनकी इस आदत के संबंध में उनके परममित्र तथा स्नेही मन्मथनाथ गुप्त कहते हैं --" किसी कमरे में बैठकर

---

1 "योगी " पत्रिका , पृष्ठ 4, श्री.राम इकबाल सिंह "राकेश " के लेख " पंडित श्री. चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत , जून ,1971 ।

हम बातचीत के आदी नहीं थे वे मेरे घर आए और हम दोनों टहलने के लिए निकल गए । वे टहलने के बहुत प्रेमी थे । मैं भी वैसा ही था । हम इस मामले में अरस्तू के अनुयायी थे । अरस्तू अपने शिष्यों के साथ टहल–टहलकर बात करते थे ।[1] स्पष्ट है कि चंद्रगुप्त जी भ्रमणशील और घुमक्कड़ व्यक्ति थे । उन्होंने परदेश यात्रा बहुत बार की । वे सबसे पहले स्वीडन गए । वहाँ छोटी बेटी रानी रहती थी । उसे मिलने वे पहली बार स्वीडन गए । बाद में वे ऑस्ट्रिया, जर्मनी, फ्रान्स, पॅरिस , लंडन गए । वहाँ जाकर वे विदेशी साहित्यिकों , कवियों मंत्री महोदयों से मिलते रहें । वहाँ की राजनीतिक आर्थिक ,सामाजिक स्थिति पर उन्होंने उनके साथ चर्चा की । वहाँ की सारी स्थितियों का अध्ययन किया चंद्रगुप्त जी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के गहरे अध्येता थे । रूस, युगोस्लाव्हिया और अमरिका की सरकार द्वारा उन्हें हिंदी लेखक कार्य शिबिर में दो बार आमंत्रित किया गया था । अतः वे दो बार वहाँ गए और अपनी प्रतिभा का परिचय वहाँ दे दिया ।

चंद्रगुप्त जी ने अमरिका तथा स्वीडन की यात्रा के दौरान् वहाँ घटित घटना प्रसंग का यथार्थ चित्रण "शुक्रवार की दो घटनाएँ " शीर्षक में किया था । चंद्रगुप्त जी विदेश गमन के पूर्व शाकाहार लिया करते थे । विदेश में उन्होंने मांसाहार लेना शुरू किया । वे अपने आप को "जैसा देस वैसा भेस" की उक्ति के अनुसार बना लेते थे । वे शहर में पैदल घूमने ,सैर करने, पहाडों पर जाने के काफी शौकीन थे । नैनिताल ,मसूरी ,कश्मिर में वे बार–बार जाया करते थे ।

1.2.2.5 **साहित्य के मर्मज्ञ एवं स्वतंत्र चिंतक--**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार केवल साहित्यिक ही नहीं बल्कि साहित्य के मर्मज्ञ भी थे । साहित्य विषयक उनकी अपनी कुछ मान्यताएँ थीं । वे एक स्वतंत्र और मौलिक विचार–चिंतक रहें हैं । उन्होंने अपने साहित्य में समाज में स्थित परिस्थिति का जीता–जागता चित्रण किया । उन्होंने जो कुछ भोगा, अनुभूत किया उसी का चित्रण पूरी सच्चाई तथा यथार्थता के साथ किया साहित्य के संबंध में उनका मानना था कि आजकल दुनिया भर में इतना साहित्य लिखा जा रहा है, उसे नवलेखक पढ़े उससे प्रेरणा ले और उसी तरह से अपने समाज का अध्ययन करें , गहराई में जाए तो उससे साहित्य

---

1 "सारिका " पत्रिका, पृष्ठ – 71, श्री. मन्मथनाथ गुप्त के लेख " साहित्य साधक चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत , मार्च 1985 ।

की मौलिकता और ऊँचाई में बहुत बड़ा अंतर पड़ेगा । साहित्यिक पुरस्कार और उसके लिए चल पड़ी आपाधापी के बारे में बहुत तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वे कहते हैं --" पुरस्कार देना एकदम गलत है, उससे और ज्यादा आफत मच जाती है । एक नजारा याद आता है मुझे बम्बई में तो बहुत सेठ हैंन, वो हलवा-पूरी बाँटते है और जो भीड़ जमा होती है तो धक्का देते हैं , कुछ वैसी स्थिति हमारे देश में साहित्यकारों की हो रही है और यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है ।"[1] स्पष्ट है कि विद्यालंकार जी शोहरत ,सम्मान, पुरस्कार, प्रसिद्धि आदि बातों के खिलाफ थे । आजकल साहित्यिक आत्मप्रचार और आत्मतुष्टि के लिए जो प्रयास करते हैं और कामयाबी हासिल करते हैं उनसे वे सख्त नफरत करते रहें ।

कहानी साहित्य के संदर्भ में उनका विचार है कि जब कोई विधा किसी निश्चित धारणा के घेरे में बांध दी जाती है तो गुण-अवगुण की ठीक-ठीक व्याख्या कर पाना संभव नहीं हो पाता । शायद इसीलिए आमतौर पर कहा जाता है कि कहानी लोकप्रियता और तकनीक में पिछड़ गयी है और नई पीढ़ी के लेखन में गहराई नहीं । मार्क्सवादी साहित्य तथा मार्क्सवाद के संबंध में उनके विचार बहुत ही सार्थक हैं । उनके विचार में वैज्ञानिक मार्क्सवाद पूर्ण सत्य की ओर अग्रेसर होने का एक प्रयत्न मात्र है । मार्क्सवाद का अन्तिम उद्देश्य मानव-समाज की आर्थिक विषमता को दूर करना है और त्याग पर अवलंबित गांधी नीति का तात्विक मूलाधार भी लगभग यही है । जहाँ तक ध्येय की प्राप्ति के साधनों का प्रश्न है, निस्संदेह उनमें बहुत बड़ा मौलिक अंतर है । उन्होंने गांधी नीति और मार्क्सवाद की विचारधारा को स्पष्ट करते हुए उनके उद्देश्य का विवेचन किया है ।

साहित्यिक उथल-पुथल और सामाजिक क्रांति के संदर्भ में उनका विचार है कि शक्ति की भी अपनी सीमाएँ हैं और वे ज्यादा नहीं बदल सकती । शिक्षा इस देश के लिए बहुत जरूरी चीज हैं । लोगों को बाकी कुछ मिलें या ना मिलें शिक्षा इस देशवासियों को जरूर मिलनी चाहिए वही सब समस्या पर एक जालिम उपाय है, इलाज है ।

---

1 "सारिका " पत्रिका, पृष्ठ - 51, "वरिष्ठ साहित्यकार चंद्रगुप्त विद्यालंकार से गोविंद मिश्र की बातचीत " लेख से उद्धृत , अगस्त , 1982 ।

कृति और कृतिकार के संबंध में उनके विचार हैं कि – " साहित्य तो साहित्यकार के अनुभूतिशील हृदय की उपज है । साहित्यकार अपने साहित्य से अधिक बड़ा है क्योंकि वह उस साहित्य का निर्माता है । साहित्यकार जितना अधिक अनुभूतिशील, निर्मल, निस्संग और कम-से-कम बौद्धिक दृष्टि से सत्यपरायण होगा , उसका साहित्य उतना ही प्रभावशाली और श्रेष्ठ होगा ।"[1] साहित्य के कानूनों और अपरिवर्तनशील परिभाषाओं से उन्हें घृणा थी । वे कलाकार के लिए किसी तरह का बन्धन स्वीकार नहीं करते थे । साहित्य की परिभाषाओं पर बहस करने की जगह मौलिक साहित्य के अध्ययन की महत्ता उनकी दृष्टि में बहुत अधिक थी । विद्यालंकार जी क साहित्यसंबंधी दृष्टिकोण था विचार। उनकी अपनी स्वतंत्र और निजी मान्यताएँ हैं जो समाज और साहित्य में तालमेल बिठाकर सामाजिक उत्कर्ष के प्रति अग्रेसर होती हैं । निष्कर्ष यह कि विद्यालंकार जी साहित्य के मर्मज्ञ एवं स्वतंत्र विचार-चिंतक थे ।

1.2.2.6 **मानवतावादी ,आदर्शवादी तथा उदारमना--**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी का जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण आदर्शवादी था । वे सत्य का आदर करना अपना परम कर्तव्य मानते थे । वे जीवन में मनुष्यता को अधिक प्राधान्य, महत्ता देते थे । उनके स्वभावगत विशेषता के बारे में मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं --" वे अपने को बढ़कर प्रगतिशील कदापि नहीं कहते थे । पर मैक्सिम गोर्की के प्रशंसको में से थे ।यह समाजवादी न होते हुए भी रूस के अनन्य प्रेमी थे । कला कला के लिए नहीं बल्कि कला जीवन के लिए है, यह उनकी मान्यता रही थी ।"[2] वे स्वतंत्र, आजादी तथा स्वच्छंद जीवन के प्रेमी थे । जीवन के प्रति उनका आशावादी दृष्टिकोण था । जिंदगी के प्रति उन्हें बहुत प्यार था । वे स्वावलंबी व्यक्तित्व के कठोर परिश्रमी, अध्ययनशील ,चिंतनशील एवं मृदु स्वभाव के थे । अपना काम वे खुद किया करते थे यहाँ तक कि अपने कपड़े अंत तक स्वयं धोते रहें । किसी से कभी कठोर बातें नहीं करते थे । जिंदगी के प्रति

---

1 "योगी ' पत्रिका ,पृष्ठ – 7, श्री राम इकबाल सिंह "राकेश " के लेख "पंडित श्री " चंद्रगुप्त विद्यालंकार से उद्धृत , पृष्ठ – 197 ।

2 "सारिका " पत्रिका , पृष्ठ – 71, श्री मन्मथनाथ गुप्त के लेख " साहित्य साधक श्री. चंद्रगुप्त विद्यालंकार से उद्धृत , मार्च , 1935 ।

उन्हें कोई शिकायत नहीं थी । उनका हमेशा " जीयो और जीने दो" तथा उदारहृदयी , सहनशील, सत्यनिष्ठ, अहिंसावादी और समाजसेवी दृष्टिकोण रहा । निष्कर्ष यह कि उनका व्यक्तित्व मानवता, आदर्श तथा उदारता से परिपूर्ण था ।

1.3 कृतित्व --

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी बचपन से ही प्रतिभासंपन्न थे । उनके अध्ययन, चिंतन, मनन का दायरा बहुत बड़ा था । उन पर महात्मा गांधी, रविंद्रनाथ टैगोर, गौतम बुद्ध जैसे महान् व्यक्तियों का प्रभाव था । उन्होंने सर्वप्रथम सन 1924 में अपनी अठारह वर्ष की उम्र में " मेरे मास्टर साहब " शीर्षक कहानी लिखी थी जो उन्होंने गुरूकुल के वार्षिक कार्यक्रम में पढ़ी थी । चंद्रगुप्त जी ने अपने जीवन काल में निम्नांकित कृतियों का लेखन किया ।

1.3.1 प्रकाशित रचनाएँ --

(1) कहानीसंग्रह

1. चंद्रकला	प्रथम संस्करण, 1929 ।
2. गहरे अंधेरे में	
3. भय का राज्य	प्रथम संस्करण, 1932 ।
4. तीन दिन	प्रथम संस्करण, 1957 ।
5. अमावस	
6. वापसी	प्रथम संस्करण, 1959 ।
7. ये खर्चीली बीवियाँ	प्रथम संस्करण, 1971 ।
8. पहला नास्तिक	प्रथम संस्करण, 1976 ।
9. मेरी प्रिय कहानियाँ	प्रथम संस्करण, 1976 ।

(2) **नाटक--**

1. अशोक – प्रथम संस्करण, 1934 ।
2. रेवा – प्रथम संस्करण, 1938 ।
3. देव और मानव – प्रथम संस्करण, 1956 ।
4. न्याय की रात – प्रथम संस्करण, 1958 ।

(3) **एकांकी--**

1. मनुष्य की कीमत
2. ताँगेवाला
3. भेड़िए
4. नव प्रभात
5. कॉस्मॉपलिटन क्लब (एकांकी नाटक संग्रह) प्रथम संस्करण, 1945 ।

(4) **जीवनी--**

1. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि हरिवंशराय "बच्चन" प्रथम संस्करण, 1960 ।

(5) **संस्मरण--**

1. छोटे बड़े दायरे

(6) **ध्वनि नाट्य संग्रह--**

1. हिन्दुस्थान जाकर कहना –

(7) **ललित लेख संग्रह--**

1. मानव जाति का संघर्ष और प्रगति – प्रथम संस्करण , 1939 ।

(8) **अनुवाद--**

1. खुले आसमान के नीचे एक रात – प्रथम संस्करण, 1971 ।
(रूस के चार महान् लेखकों – इवान तुर्गनेव, तालस्ताय, चेखब एवंम् मैक्झिम गोर्की की प्रसिद्ध कहानियों का हिंदी अनुवाद संग्रह)

1.3.2 हिंदी मिशनरी के एक सच्चे सेवक--

चंद्रगुप्त जी गुरूकुल के स्नातक थे । उसी समय राजकीय तथा कड़े धार्मिक वातावरण के परिणामस्वरूप धर्म के साथ भाषा को जोड़ने की परिपाटी अलीगढ़ से शुरू हुई थी । इसीकारण हिन्दी बनाम उर्दू संघर्ष चरमसीमा पर था क्योंकि हिन्दी हिन्दुओं की और उर्दू मुस्लिमों के भाषा बनी हुई थी । इसी समय हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर उनके प्रचार–प्रसार की जिम्मेदारी हिन्दी मिशनरी के कार्यकर्ताओं पर थी ।

हिन्दी की प्रान्तीय बोली भाषा पंजाबी, मुलतानी, गढ़वाली, राजस्थानी, अवधि आदि को एक ही भाषा के रूप में लाने तथा इन्हीं प्रान्तीय भाषाओं को हिंदी के रूप में व्यावहारिक रूप देने का काम हिंदी मिशनरीयों का था । वे हिंदी का बहुत बढ़ा–चढ़ाकर प्रचार–प्रसार करते थे । उसमें गुरूकुल से निकले हुए प्रतिभाशाली व्यक्तियों–सत्यकेतु विद्यालंकार, अमरनाथ विद्यालंकार ,चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि ने अपने–अपने ढंग से भाग लिया था । उस समय यह भाषिक लड़ाई कितनी कठिन थी इसका अंदाजा हम नहीं लगा सकते ।

हिंदी मिशनरी को चंद्रगुप्त जी के योगदान के संदर्भ में मन्मथनाथ गुप्त जी का कथन है कि -- " चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के सार्वजनिक जीवन का सूत्रपात हिंदी के एक मिशनरी के रूप में हुआ । वह बड़े चाव से यह सुनाते थे कि जब प्रेमचंद या निराला जैसी हिंदी की विभूतियाँ पंजाब में पधारी तो उन्होंने कैसे उनके स्वागत आदि में भाग लिया ।"[1] चंद्रगुप्त ,अमरनाथ , सत्यकेतु आदि को हिंदी

---

1 सारिका" पत्रिका, पृष्ठ – 71, श्री मन्मथनाथ गुप्त के लेख " साहित्य साधक चंद्रगुप्त विद्यालंकार"से उद्धृत, मार्च, 1985 ।

निशनरी के रूप में साधनसामग्री बाहर से संयुक्त प्रान्त आदि से मँगानी पड़ी । उस समय हिंदी मिशनरियों का काम पंजाब से शुरू हुआ, वही उर्दू के जरिए हिंदी की लड़ाई लड़ी गयी । चंद्रगुप्त जी ने पंजाब में हिंदी की लड़ाई को बल पहुँचाने तथा अपने तरकश को भरने के लिए काशी की कई बार यात्राएँ की । क्योंकि उस वक्त प्रेमचंद ,प्रसाद जैसी हिंदी की महान् हस्तियाँ वहाँ थी ।

चंद्रगुप्त जी हरिवंशराय "बच्चन" जी से इलाहाबाद जा मिलें । इस के साथ ही पटना और कलकत्ता के साहित्यकारों से भी जाकर मिले । उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु जैनेंद्र ,सुमित्रानंदन पंत और हजारीप्रसाद की भेंट की । यह उस समय की बात है जब चंद्रगुप्त जी हिंदी के लेखक कम और हिंदी के मिशनरी अधिक थे । उन्होंने हिंदी के मिशनरी तथा साहित्यिक के रूप में हिंदी की आजन्म सेवा की ।

1.3.3 **सफल पत्रकार एवं संपादक --**

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने जीविकोपार्जन के लिए पत्रकारिता को चुना था । वे एक सफल पत्रकार थे । उन्होंने सन 1932 से लेकर सन 1967 तक सफल पत्रकार एवं संपादक के रूप में काम किया । देहरादून और लाहौर से प्रकाशित "ज्योति " और दैनिक " जन्मभूमि " का सफल संपादन किया । गुरूकुल विश्वविद्यालय से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका " राजहंस " के संपादन में भी उन्होंने अपनी साधना और प्रतिभा का परिचय दिया । सन 1932 से 1947 तक उन्होंने "लाहौर विश्वसाहित्य ग्रंथ माला " के अंतर्गत लगभग एक सौ ग्रंथों का संपादन किया । इसके साथ ही भारत सरकार द्वारा प्रकाशित " विश्वदर्शन " के भी वे संपादक रहे । प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका " आजकल " का सफल संपादन किया । साथ ही "सारिका " जैसी लोकप्रिय पत्रिका का संपादन किया । इन सभी पत्रिकाओं में उन्होंने नव लेखक , कवियों के साहित्य को प्रमुख रूप से प्राधान्य देकर उन्हें साहित्य लेखन के लिए प्रेरित एवं उत्साहित किया । निष्कर्ष यह कि वे एक सफल पत्रकार एवं संपादक रहें ।

पत्रकारिता पर चर्चा करते समय उन्होंने राम इकबाल सिंह " राकेश " जो से एक मुलाकात में कहा था --" व्यक्तिगत धारणा से ऊपर उठकर नवीन चक्षुष्मता से जानना , देखना और परखना एक विवेकशील पत्रकार का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए । एक लोकप्रिय पत्र के प्रत्येक अंक में एक नवीन संयोजन और एक नवीन आकर्षण का होना आवश्यक है । आज समाचार-पत्र स्वाधीन नहीं हैं ।

कहने के लिए लेखन की प्रतिबन्ध हीन स्वाधीनता तो है, परंतु सच्चे अर्थों में भारतीय समाचार, पत्रकारों को पूर्ण मानसिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं है । इस पृथिवी पर विचार स्वातंत्र्य नाम की कोई वस्तु कहीं विद्यमान नहीं है ।"[1] वे मानते थे कि पत्रकार एवं समाचार पत्रों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए । वे पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में विविध अंगों का समावेश करना चाहते थे । उन्होंने एक पत्र की तुलना उस रमणीय गुलदस्ते के साथ की थी जिसमें अपूर्वता के साथ एक विधा एक संगति ,एक रीति और एक रंगीन कलात्मक गरिमा दिखाई पड़ती है । उनके विचार में पत्रकारिता की तीन श्रेणीयाँ हैं समाचार-पत्र, विचार-पत्र और साहित्यिक या सांस्कृतिक पत्र । चंद्रगुप्त जी निर्भय , खुले विचारक और स्वतंत्र विचार के पत्रकार, संपादक थे जो नए लेखकों ,कवियों के साहित्य को पत्र-पत्रिकाओं में स्थान देते थे । वे सफल पत्रकार, संपादक होने के साथ-साथ एक अच्छे समीक्षक भी थे ।

1.3.4 पुरस्कार एवं सम्मान --

चंद्रगुप्त जी के कृतित्व को हिंदी साहित्य जगत् ने तथा प्रादेशिक सरकार ने समय-समय पर सम्मानित किया है । अपने जीवन काल में चंद्रगुप्त जी को निम्नांकित पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए

1 सन 1960 में उन्हें पंजाब साहित्य क्षेत्र का पुरस्कार मिला । पंजाब साहित्य क्षेत्र ने उन्हें दो बार पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया

2 दिल्ली प्रदेश द्वारा भी उन्हें पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया ।

1.3.5 चंद्रगुप्त विद्यालंकार के जीवन तथा साहित्य का संबंध --

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के जीवन का उनके साहित्य से गहरा संबंध है । उनका जीवन जिस समय में गुजरा वह समय भारत की आजादी के लिए मर मिटने का समय था । उन्होंने गुलाम भारत

---

1 योगी ' पत्रिका, पृष्ठ - 11, श्री राम इकबाल सिंह " राकेश " के लेख" पंडित श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार"से उद्धृत, जून , 197: ।

और स्वतंत्र भारत, दोनों स्थितियों को भोगा था अतः उनके साहित्य में देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है । देश की समस्याएँ ही उनकी असली संवेदना है । ये समस्याएँ राष्ट्रीय संवेदना के रूप में "अशोक", " रेवा " और " न्याय की रात " नाटक में देखने को मिलती है ।

भारत विभाजन के कारण निर्माण हुई शरणार्थी – समस्या का वे स्वयं शिकार हुए थे । उनका जन्म कोटअदू नामक गाँव में , जो अब पाकिस्तान में है, होने के कारण उन्हें वहाँ का घर-बार तथा सब कुछ छोड़कर नए सिरे से बसने के लिए भारत आना पड़ा । अतः "न्याय की रात " में शरणार्थी कमला की समस्या में उनकी अपनी अनुभूति छिपी हुई है । तत्कालीन भीषणतम् परिस्थिति का लेखा-जोखा " न्याय की रात " में देखने को मिलता है । चंद्रगुप्त जी पर गुजरी परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए राम इकबाल सिंह " राकेश " कहते हैं –' तत्कालीन भीषणतम् परिस्थिति की कठिनाई के कारण संरक्षण के साधन उपलब्ध न होने से चंद्रगुप्त जी का संपूर्ण पुस्तकालय, उनकी रोजनामचाओं के साथ पाकिस्तान में ही रह गया । उनकी सहधर्मिणी के बहुमूल्य आभूषण और प्रेमचंद जी के सुन्दर-से-सुन्दर विचारव्यंजक पत्र भी वहीं रह गये ।"[1] इसी विभाजन की त्रासदी एवं शरणार्थी समस्या को उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया । साथ ही उन्होंने हरिद्वार में पंड़ितों को धर्म में काफी फ्रॉड् करते हुए देखा था । अतः " अशोक " और " रेवा " नाटक में उन्होंने सच्चे धर्म की प्रतिष्ठापना और धार्मिक सांस्कृतिक श्रेष्ठता का गठन किया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता का जो चित्र उन्होंने देखा उसका सही दस्तावेज "न्याय की रात " के जरिए चित्रित हुआ है निष्कर्ष यह कि चंद्रगुप्त विद्यालंकार के विवेच्य नाटकों का और उनके जीवन का गहरा संबंध है । उनका "भोगा हुआ " यथार्थ उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित है । मुख्य रूप से राष्ट्रीय एवं सामाजिक संवेदना उनके साहित्य के मूल स्वर हैं जिनको हम उनके जीवन अनुभव में पाते हैं । निष्कर्ष यह कि विद्यालंकार जी का जीवन परिचय उनके साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध होता है ।

---

1 "योगी " पत्रिका , पृष्ठ – 7, श्री राम इकबाल सिंह " राकेश " के लेख " पंड़ित श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार " से उद्धृत , जून, 1971 ।

निष्कर्ष--

चंद्रगुप्त जी के जीवन परिचय , व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन के पश्चात मैं इस निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ कि ---

1 उनके महान् व्यक्तित्व के निर्माण में गुरूकुल कांगड़ी , उनके गुरू स्वामी श्रद्धानंदजी, पिता के संस्कारों एवं पत्नी के सहयोग की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही ।

2 चंद्रगुप्त जी का जीवन बहुत अच्छी तरह बीता । संघर्ष को उन्होंने सहज स्वीकार किया । उन्हें जिंदगी के प्रति कोई शिकायत नहीं थी, जिंदगी के प्रति बहुत प्यार था ।

3 उनके तेजस्वी मुखमण्डल पर प्रतिभा का तेज दिखाई देता था । सभी के साथ घुलमिलकर बातें करना, मित्रता जल्दी बढ़ाना ,बहुत ही नरमदिल, प्यारातथा संवेदनशील स्वभाव उनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ थीं । वे आदर्शवादी, सत्यप्रिय और आस्था के प्रति सतर्क और स्वतंत्रता के पक्षधर थे ।

4 वे समाजवादी न होते हुए भी रूस के अनन्य प्रेमी थे तथा गरीब और असहाय, शरणार्थी लोगों के प्रति उन्हें हमदर्दी थी ।

5 विद्यालंकार जी हिंदी भाषा के प्रेमी थे । हिंदी के अच्छे प्रचार-प्रसारक थे । अन्य भाषा के अच्छे ज्ञाता थे अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के गहरे अध्येता थे ।

6 देश-विदेश का भ्रमण करना उन्हें अच्छा लगता था । अनेक प्रकार के बड़े-बड़े साहित्यिक, नेता लोगों से मिलना, उनके साहित्य तथा अन्य स्थितियों पर अध्ययन एवं चिंतन-मनन करना उनकी आदत थी । उन्होंने कई देशों की यात्रा की थीं ।

7 वे प्रसिद्धि, शोहरत , आडम्बर, पुरस्कार, सम्मान के खिलाफ थे । वे किसी भी वाद-विशेष में नहीं रहना चाहते थे । साहित्य क्षेत्र में उनकी अपनी स्वतंत्र विचारप्रणाली और मान्यता रही । वे खुले दिल के थे ।

8 चंद्रगुप्त जी ने एक मददगार, प्रेरणादायी और विद्वान साहित्यिक , पत्रकार एवं संपादक के रूप में काम किया । अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन उन्होंने बड़ी सफलता के साथ किया ।

9 चंद्रगुप्त जी खाने, पीने और सैर करने के शौकीन थे । पहाड़ों पर तथा पर्यटन स्थल पर जाना उन्हें अच्छा लगता था । अपने साहित्य में उन्होंने जीवन की सच्चाईयों का बड़ी यथार्थता से चित्रण किया ।

10 "कला, कला के लिए नहीं बल्कि कला जीवन के लिए " इस सिद्धांत के वे प्रेमी थे । आजाद व्यक्तित्व के हिमायती थे ।

11 चंद्रगुप्त जी ने विदेशी कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया ।वे सफल अनुवादक एवं अच्छे समीक्षक भी रहें । उन्होंने अपने संपादन काल में नवलेखकों को प्रेरणा दी । उन्हें उत्साहित किया तथा उनके साहित्य को पत्र-पत्रिकाओं में स्थान दिया ।

उन्होंने अपने साहित्य में प्रामाणिकता और सच्चाई के साथ वास्तववादी चित्रण किया । उन्होंने कहानी संस्मरण, जीवनी , एकांकी , अनुवाद , विचारात्मक ललित लेख आदि का लेखन बहुत ही सफलता के साथ किया । अपनी जिंदगी में जो कुछ अनुभूत किया उसी का चित्रण उन्होंने साहित्य में किया । विद्यालंकारजी के साहित्य का और उनके जीवन का गहरा संबंध है । उनका " भोगा हुआ यथार्थ ", उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित है । मुख्य रूप से राष्ट्रीय एवं सामाजिक संवेदना उनके साहित्य के मूल स्वर हैं जिनको हम उनके जीवन अनुभव में पाते हैं । निष्कर्ष यह कि विद्यालंकार जी का जीवन-परिचय उनके साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध होता है ।